बनवास

हिन्दी ADDA

जमीला हाशमी

बनवास

परिन्दे तेंज-तेंज पर मारते उड़ते जाते हैं, और धूप पीली होकर अचल के बड़े तालाब की सीढ़ियों पर उतर आयी है। गुरुद्वारे के कलश का रंग डूबती हुई किरणों में सुनहरा सफेद लग रहा है और बड़े मैदान से दूसरी ओर लालिमा बिखरने लगी है। अब थोड़ी देर में ही रावण को आग लगा दी जाएगी। लोग शोर मचाएंगे, डर-डर कर दूर भागेंगे

और शाम के नीले धुंधलके में उड़ती हुई चिनगारियाँ फुलझड़ियाँ लगेंगी। देर रात आग के शोले उठेंगे। आस-पास के लोगों के चेहरे अग्नि के प्रकाश में बड़े भयानक लगेंगे, जैसे इनमें से हर एक रावण का रूप धारे सीता को जुदाई से विलाप करते देखने और दूसरी बार बनवास भोगते पाकर खुश होने यहाँ आया हो।

बनवास कितनी कठिन बात है, पर किसी के वश में तो कुछ भी नहीं, कौन अपनी इच्छा से दुख को गले लगाता है?

भाई कहा करते थे, "बीबी! ये सारा समय सपने-से क्यों देखती हो। ये प्यार जो अब तुम्हें मिलता है, प्रकाश जो तुम्हारे आस-पास दिख रहा है, हौले-हौले कम होता जाएगा, समय हर वस्तु में कमी कर देता है। पर ये बर्बादी इतनी आहिस्ता से होती है कि हमें इसकी आदत पड़ जाती है," आज भाई कहाँ है? अगर जन्मभूमि की गन्ध लिए मेरे साथ-साथ चलने वाली हवा जा सकती है तो उन्हें कहीं ढूंढ़ सकती तो मैं कहती'जाकर पूछो तो सही इस दुख में कमी क्यों नहीं होती?'

वर्षों बोझ उठाते और कठिन रास्तों से गुजरने पर भी इनसान सपने क्यों देखता है? सुख की आशा क्यों रखता है? प्रकाश से इतना प्रेम क्यों करता है?

सीता जी ने बनवास भोग कर यही दुआ क्यों की थी कि वह रामचन्द्र से मिल सके। क्या विपदा मानव को कठोर नहीं कर देती कि वह अच्छे दिनों की आशा ही छोड़ दे।

अँधेरे से प्रेम क्यों नहीं हो सकता?आंखिर क्यों? नाख के पेड़ में उस साल से फूल आ रहे हैं जिस साल मुन्नी पैदा हुई थी। रुत बदलती है तो टहनियाँ फूलों से भर जाती हैं, और पेड़ फलों के बोझ से झुक जाता है, पेड़ और धरती का सम्बन्ध और भी गहरा हो जाता है। इसकी जड़ें धरती में और गहरी होती चली जाती हैं। इस सम्बन्ध को कोई भी नहीं तोड़ सकता।

मुन्नी अब बड़ी हो गयी है। कितने वर्ष मेरे समीप से दबे पाँव निकले चले जाते हैं।

आज बड़ी मां ने गुरुपाल से कहा था, "काका, बहू और बच्चों को दशहरे में घुमा ला। कितने वर्षों से वह इस गाँव से बाहर भी नहीं निकली।"

गुरुपाल ने बड़ी तेजी से कहा, "मां, तूने यह भी कहा कब था, यह वर्षों से बाहर नहीं निकली तो इसमें मेरा क्या दोष है!"

भला इसमें किसका दोष हो सकता है?जब कोई मुझे बहू कहता है तो लगता है गाली दे रहा हो। वर्षों से सुन रही हूं। उस रात से सुनती आयी हूं जब गुरुपाल ने मुझे इस आँगन में ढकेला था और चौके में बैठी हुई बड़ी मां से कहा था

"मां, देख तेरे लिए बहू लाया हूं, बांकी और सुन्दर। आज जितनी लड़कियाँ हमारे हाथ लगीं उनमें से सबसे अच्छी है", और दीए की लौ को उठा कर मां मेरी तरफ आयी थीं। भूख और डर णसे मेरी आँखें फटी हुई थीं। मीलों नंगे पाँव चलकर मुझमें अब उँगली उठाने की भी शक्ति न थी। मैं इनके कदमों में ढेर हो गयी। आंगन में बँधी भैंस और गाय मुझे टुकर-टुकर देख रही थीं और चारा छोड़ कर खड़ी हो गयी थीं। मां ने सिर से पाँव तक मुझे कई बार देखा था और फिर कहा था

"तू अगर अच्छे काम करता तो आज ये हाल न होता मेरा, देख, चूल्हा झोंकते-झोंकते मेरी आँखें अन्धी हो चली हैं। और सारी कहारियों ने फसल पर अनाज न मिलने के कारण हमारे घर आना बन्द कर दिया है। बता तू ही मुझसे इस घर का बोझ कैसे संभालेगा। खेतीबाड़ी करे तो क्या ही सुख हो मुझे।"

गुरुपाल ने कहा, "देख तो सही अब महरियों-कहरियों के नखरे उठाने की क्या जरूरत है। ये तो तेरी दासी है। इसी से चक्की पिसवा, पानी भरवा, जो मन चाहे करवा, अब मैंने तुझे बहू लाके दे दी है।"

सारे गाँव में बहुएं आयीं, न कोई बाजा बजा, न किसी ने ढोलक पर लहक-लहक कर गीत गाए, न नाचने वालियों ने स्वांग भरे, न कूल्हे मटका कर अनुकरण किया।

मेरे धूल से सने हुए बालों में न किसी ने तेल डाला न किसी ने शृंगार किया। कोरे हाथों और उजड़ी मांग से मैं सुहागन बन गयी। बड़ी मां ने गुरुपाल की बातें सुनकर यूं मेरी ओर देखा जैसे मैं कोई विपदा हूं जिसे उसका पोता कहीं से उठा लाया है। फिर दीया उसी तरह हाथ में लिए वह चौके में चली गयी और मुझसे किसी ने कुछ न पूछा कि बहू का कैसा स्वागत हो रहा है।

तब से आज तक मैं भी सीता जैसी हूं। मैं बनवास भोग रही हूं। झूले उखाड़ते, बीड़ियाँ पीते, झूलेवाले एक-दूसरे को गालियाँ दे रहे हैं और गधे पर सामान इतनी शक्ति से लाद रहे हैं जैसे गधे लकड़ी के हों। रामलीला की रथें एक ओर खड़ी हैं। और रूप धारनेवाले लड़के चमकीले कपड़े पहने मलाई की कुल्फियाँ और चटनी वाले पकौड़े खा रहे हैं। दूध और चटनी के धब्बे इन रंगबिरंगे कपड़ों पर कोढ़ के दागे लगते हैं। मुन्नी खड़ी उन्हें तकती जा रही है। उसे इस बात का भी एहसास नहीं कि वह खो जाएगी। एहसान होने से भी क्या होता है, जिसे खोना होता है वह भरे घर में खो जाता है।

गुरुपाल उन्हें खींच रहा है और दोनों लड़के थक कर रोते हुए हर बेचने वाले को देखकर खरीदने के लिए पाँव पटक रहे हैं। ये मेला है। मांएं, बच्चों से लापरवाह भीड़ में धक्के खाकर इधर-उधर हो जाती हैं, और छोटे बच्चे एक-एक चेहरे को तकते जोर-जोर ये रोते आगे-ही-आगे भागे जाते हैं। भला मेले में बिछुड़ने वाले कभी मिलते हैं? यह वियोग जन्म-जन्मान्तर से चाहने वालों के बीच दीवार बन जाता है। वह चेहरे जिन पर हम सब कुछ लुटा दें, इस आस पर कि हम इन्हें एक बार फिर देख सकें, कहीं दिखाई नहीं देतेरास्ते लहरों पर ताना-बाना बुनने वाले कीड़ों के कदमों के पदचिन्हों की तरह हमारे पीछे मिट जाते हैं। हम जिन राहों से चल कर आते हैं उनसे लौट नहीं सकते। कुछ भी तो वापस नहीं आता और मेले की भीड़ आगे चलती रहती है।

"समय कभी लौट कर नहीं आता," भैया कहा करते थे, "बीबी जो क्षण बीत गया, वह मिट जाता है, धूल बन जाता है।" जब मैं पढ़ने में दिल नहीं लगाती और गुड़ियाघर को सजाने में स्कूल से आकर सहेलियों के साथ लगी रहती तो भैया मुझे समझाया करते थे।

यह गुड़ियाघर मुझे बाबा ने लाकर दिया था। मुन्नी अपने दोनों हाथों से एक बड़ी-सी कपड़े की गुड़िया स/भाले हुए है। गुरुपाल ऊपर भीड़ को देख रहा है और मुन्नी समय-समय पर झुक-झुककर अपनी गुड़िया को देखती जाती है। दोनों लड़के रावण की मूर्ति लिए हुए हर चेहरे को आश्चर्य से देख रहे हैं। मुन्नी की आ/खों में अपनी गुड़िया के लिए कितना प्रेम है। कपड़े के चौड़े से मुंह पर बेढंगे रंगों से नाक और सिरआ/खें बनी हुई हैं। नाक में नथुनी है। गोटे लगी चुनरी सिर पर रखे अपने लहंगे को संभाले ये कंचनी, लगती है अब नाचेगी। अचल के तालाब के किनारे होकर खेतों में

से हमारा रास्ता संग्राओं को जाता है। जीवन की यात्रा निरन्तर चलती रहती है। सीधे टेढ़े रास्तों और उलझी हुई पगडण्डियों से किसी लक्ष्य पर पहु/चने की प्रबल इच्छा भी हो, तो भी निरन्तर चलते रहना पड़ता हैहमेशा-हमेशा चाहे पाँव घायल हों और दिल में कुछ न हो।

शाम का नीला धुंधलका और नीचे उतर आया है। शाम न जाने क्यों मुझे बहुत उदास कर देती है। आकाश पर अकेला तारा, धड़कता, काँपता, दीये की लौ की तरह थरथराता है और नीलाहट के रिक्त समुद्र में इसकी तन्हाई मुझे अपने बनवास की याद दिलती है। मानरव के इस अकेलेपन में मैं उस अकेले पेड़ की तरह हूं जिस पर न फूल आते हैं न फल।

ये तारा मुझे उस जहांज की याद दिलाता है जिसमें बैठ भाई समुद्र पर गये थे। वह अपने ढेरों सामान के साथ इतनी दूर की यात्रा करने के लिए जब तैयार हो रहे थे, तो अम्मा रो पड़ी थीं

मगर फिर भी धैर्य के साथ वह सामान ठीक कर रही थीं और दुआएँ पढ़ती जाती थीं। बाहर बाबा कई तरह के प्रबन्ध में लगे थे और भैया बड़े उदास थे। आपा चुपचाप गुमसुम आँगन में दबे पाँव चलती इधर-उधर आ जा रही थी। मैं सारे घर में चहकती फिरती थी। चोट जब तक न लगे घाव के दर्द का कहाँ पता चल पाता है।

बन्दरगाह तक हम सब इन्हें पहुँचाने गये थे। भैया भाभी का सामान रखवाने, कागंज ठीक करने जहाज पर ऊपर आ-जा रहे थे और मैं जंगले पर झुकी मटियाले हरे रंग के पानी को देखती भाई से पूछ रही थी, "यह पानी ऐसा क्यों हैं? इस पर तेल के धब्बे क्यों हैं? नावें क्यों हैं? ऊँची-नीची लहरों पर डोलती ये नावें जब डोलती हैं तो सिर नहीं चकराता क्या?" प्रश्नों से परेशान होकर भाई कह रहे थे जब तू बड़ी हो जाएगी न बीबी तो सारी बातें अपने आप मालूम हो जाएंगी।

और आज मुझे मालूम हुआ कि जिस नाव के साथ चप्पू न हो वह डूब जाती है। नावों को डुबोने के लिए एक लहर भी काफी होती है। वह तो तटों पर भी डूब जाता हैं। बड़े होने पर जब इन बातों का पता चला तो भाई नहीं है।

फिर जहाज की सीटियाँ सुनाई दीं और बाबा ने भाई को गले लगाकर सिर पर हाथ फेरा और अन्त में खुदा को समर्पित किया। भैया मां से लिपट गये थे। आपा बड़े कमजोर दिल की थी, बात-बात पर रोने लगती थी। उसे हिचकियों से रोते देखकर भाई ने कहा था

"बीबी को देख कैसी खुश है भला। इसमें रोने की क्या बात है, दो साल में तो मैं लौट ही आऊँगा, कोई मैं हमेशा के लिए थोड़े ना जा रहा हूं." फिर मुझे सीने से लगा कर बोले, "बीबी मैं तेरे लिए पेरिस से उपहार लाऊँगा, तू मुझे पत्र लिखती रहना" और मैंने जोर से सिर हिला दिया था। फिर जब अन्तिम सीटी सुनाई दी तो वह बड़े सन्तुष्ट से बहुत लापरवाही से पग उठाते जैसे कहीं समीप ही जा रहे हों चले गये। जब तक जहांज दिखता रहा हम रुमाल हिलाते रहे, फिर शाम की धुन्ध में बन्दरगाह के प्रकाश की परछाईं पानी की लहरों में डोलने लगी और जहांज की बत्ती अकेले तारे की तरह काँपती हुई आँखों से ओझल हो गयी। इसके बाद सारा प्रकाश मेरे चारों ओर हमेशा के लिए डूब गया। लहरों में से फिर कोई किरण नहीं निकली।

मैं अम्मा से लिपट कर कितनी जोर से चीख पड़ी थी, जैसे कोई मेरे दिल में कह रहा था अब ये चेहरा कभी दिखाई नहीं देगा। अब तू भाई को कभी देख न सकेगी। मेरा दिल जोर-जोर से काँप रहा था जैसे पश्चिम में खाली आसमान को देखकर रूहें काँप जाती हैं। देर बागों में रात अपनी काली लटें बिखरा रही थी। गुरुपाल ने अपने दोनों बच्चों को कन्धों पर बिठा लिया है और वह खेतों के बीच सफेद लकीरों-सी पगडंडी पर हमसे आगे-आगे जा रहा है और मुन्नी धीरे-धीरे चल रही है। पानी के नालों को छलाँग कर वह उस खेत पर हमारी प्रतीक्षा करेगा, और दोनों बच्चों को रावण की कहानी सुनाएगा। इसे क्या मालूम सीता उसके पीछे आ रही है और वह स्वयं रावण है।

मुन्नी मुझसे कहती है, "मां, स्वरूप के मामा ने उसे दशहरे पर बड़े अच्छे रंग-बिरंगे कपड़े भेजे हैं। रेशमी हैं, हाथ लगाने में बहुत अच्छे लगते हैं। मां मेरा कोई मामा नहीं है जो मुझे अच्छी-अच्छी चीजें दे सके। मां तुम बोलती क्यों नहीं? मेला अच्छा नहीं लगा तुम्हें, तुम थक गयी हो ना मां?

"हां बेटी मैं थक गयी हूं ,मैं बूढ़ी हो गयी हूं मुझे बहुत चलना पड़ा है ना।"

"कोई बूढ़ी नहीं हो गयी," मुन्नी बड़े विश्वास के साथ मेरी ओर देख कर कहती, "तुम तो देवी की मूर्ति लगती हो, बड़ी मां भी यही कहती है।"

मुन्नी को क्या पता मुझे कितना चलना पड़ा है। एक जीवन से दूसरे जीवन तक की दूरी कम नहीं होती, और जब इनसान ऐंठ जाता है तो उसके मन में कोई भी आशा नहीं रहती, तब वह पूज्यनीय हो जाता है। संग्राओं के रास्ते पर बिछड़ों की प्रतीक्षा करते-करते मेरी आँखें पथरा गयी हैं। मेरा मन खाली है, मैं लक्ष्मी हूं। फिर भी दुखों का ताना कितना अटूट है। गहराऔर पक्का, कभी साथ न छोड़ने वाला।

मुन्नी फिर पूछ रही थी, "क्या हमारे कोई मामा नहीं?

मैं इससे क्या कहूं इसे क्या उत्तर दूँ। दोराहे पर खड़ी सोच रही हूं।

भैया मुझे कितना प्यार करते थे पर मैं उनसे डरती भी थी। वह घर में घुसते तो चुनरी अपने सिर पर आ जाती। चाल में ठहराव और हंसने की ध्वनि धीमी हो जाती। मैं इनके सामने खड़ी होती तो लगता दुनिया में इनसे लम्बा कोई होगा ही नहीं। साफ-सुथरी लकीरें, न कागज गन्दे करते, न हाथ में स्याही भरते। मुझे कहते, "बीबी जब तू बड़ी हो जाएगी तो तू भी ऐसे ही लिखा करेगी।" आज भैया मुझे देखते तो क्या कहते? मेरे भाग्य की रेखाओं पर इतनी स्याही है कि सारे पन्ने पर एक भी तो सीधी रेखा दिखाई नहीं पड़ती। मुझे तो कभी लिखना न आया।

उन दिनों गुड़ियाघर सजा कर मैं सोचा करती थी, हम इसमें रह सकते हैं। अम्मा, बाबा और मैं, भैया और आपा सभी यहाँ रहेंगे, जीवन एक रसभरा गीत है, कोई कमी नहीं इसमें।

भैया की शादी हुई तो मैंने कहा था हमारा घर स्वर्ग है आकाश वाला स्वर्ग। उन दिनों अगर मैं दुआ मा/गती तो समझ में नहीं आता कि क्या माँगू। आज की तरह मैंने खुदा से कुछ नहीं माँगा। सुख और दुख की चरम सीमा, जीवन के चक्कर में एक ही डगर पर है।

भाई समुद्र पार चले गये और मेरे स्वर्ग के स्वप्न चूर-चूर हो गये। सारे जीवन की सिलवटें नुकीले किनारों के काँच के टुकड़ों की तरह इधर-उधर फैलकर गुजरने वालों को घायल कर रही हैं। राह के दूसरी ओर जाने वाली तो कोई भी नहीं रहा। रास्ता ऐसे सूना पड़ा था जैसे श्मशान घाट हो। दूर-दूर तक कोई नहीं आता। सीता जी के विलाप को इस देश में कौन सुनता, अकेलेपन का दुख कितना कठोर होता है, जीवन कितना कठिन हैं, गुरुपाल दूर खड़ा मुझे पुकार रहा था। मुन्नी को पुकार रहा था। हम दोनों बहुत हौले-हौले चल रहे हैं। कपास के खेतों में केवल सूखी लकड़ियाँ खड़ी हैं। हंसते फूल लोग समेट कर ले जाते हैं। गेहूं के खेतों में अभी न बालें फूटी हैं और न इनमें दाने पड़े हैं।

बड़ी मां बहुत बेचैन होंगी। मेरी ओर से वह हमेशा चिन्तित रहती हैं। जिस देश का वह सोचती हैं उसका रास्ता कठिन है। घायल दिल को लेकर उजड़ी मांग के साथ मैं भला कहाँ जा सकती हूं।

गाने वालों की टोलियाँ भजन गाती मेरे पीछे आ रही हैं। अचल के तालाब के पास जमा हुआ मेला अब बिखर रहा हैं। मजदूर जोर-जोर से बातें करते मेरे और मुन्नी के समीप से गुजर रहे हैं। महिलाएं अच्छे-अच्छे कपड़े पहने, दोपट्टे को संभालती घूंघट माथों तक सरकाए मेले में खरीदी मिठाइयाँ और पोटलियों को हाथ में पकड़े, बच्चों को कन्धे से चिपटाए नंगे पाँव तेंज-तेंज चल रही हैं।

"मां तुम चुप क्यों हो? कोई बात करो न मुझे डर लग रहा है।" मुन्नी बढ़ते अँधेरे में मेरे हाथ को पकड़ने के प्रयत्न में अपनी गुड़िया को स/भाल नहीं सकती। इसकी आवांज आँसुओं से भीग रही है। इसको कोई और प्रश्न पूछने का होश नहीं।

मुन्नी जब बड़ी होगी तो इसे अपने आप पता चल जाएगा कि अँधेरे से डरना बेकार है। जब इसका जादू चल पड़ता है तो कुछ किये नहीं बनता। भाई कहा करते थे, "बीबी पानी में शक्ति है अपना रास्ता स्वयं ढूंढ़ लेता है।" मैं हर काम को करने में लगी रहती हूं ताकि व्यस्त रहूं सोचने-विचारने का समय न मिल पाए।

जब समय था तो सोच न था, अब सोच है तो समय नहीं। हर जगह कुछ-न-कुछ कमी रह ही जाती है। कभी कुछ नहीं होता और कभी बहुत कुछ। आज आँखें बन्द करती हूं। तो दिल कहता है वह सब अभी आएंगे और भैया मुझे देखते ही कहेंगे 'बीबी यह क्या चेहरा बना रखा है, फुलकारी तुम्हारे सिर पर अच्छी ही नहीं लगती। उतारो इसे। ये देख मैं तेरे लिए क्या लाया हूं। छोड़ दे सारे काम, इधर आ मेरे पास बैठ। जब हम आया करें तो बस मेरे पास ही बैठा कर।' प्रेम के सहारे जो स्वर्ग आबाद था उस पर इस प्रकार धूल छा जाएगी सोचा भी नहीं था। हम तस्वीरों की तरह वास्तविकता की परछाई हैं। मेरे दिल तो हमेशा से बावला था, उल्टी बातें सोचने वाला और बड़ा ही मूर्ख!

दिल हमेशा से अनहोनी बातें सोचता और यूँ ही धड़कता है। जब इससे बातें करती हूं तो कहता है, "आखिर तेरा क्या जाता है बीबी!सपनों पर तो किसी का वश नहीं और फिर उस सपने में क्या बुराई है कि खुले किवाड़ों के अन्दर किसी दिन वह सब आ जाएं जिनकी तुम्हें प्रतीक्षा सता रही है।"

मैं कहती हूं, मेरे लिए अँधेरा-ही-अँधेरा है, निराश होना घोर पाप है, पर आशा आखिर किससे करूँ?

मुन्नी मेरा आंचल पकडे पूछ रही है, "मां बताना हमारे घर क्यों नहीं आते, क्या दीपावली में हम मामा के घर नहीं जाएंगे मां? मां अब मेरा दिल कहीं नहीं लगता, मैं बस मामा के पास जाऊँगी।"

किससे पूछूँ, इसके मामा का घर किस नगर में है। संग्राओं से बाहर मुझे सारे घर गुड़ियाघर लगते हैं। जिनकी कोई वास्तविकता नहीं।

और फिर भी आत्मा न जाने क्यों भटकती ही रहती है। ऐसी वस्तुएं ढूंढती है जो कहीं भी नहीं दिखतीं। ऐसी आवांजों को सुनना चाहती है जो फिर कभी सुनाई न देंगी। सिर पर गोबर के टोकरे उठाते, दूध दुहते न जाने क्यों कुछ महीनों से मेरा दिल धड़का करता है। पर अब मुझे मालूम है वह सब जहाँ भी हैं वह देश मेरी पहुँच से बाहर है। कहानियों के उस नगर की खोज लगाकर मैं क्या करूंगी।

गुरुपाल, बच्चे और मैं अब सब साथ चल रहे हैं। सरकंडों के रेशमी बौर अब मेरे बालों को छू रहे हैं।

मुन्नी कहती है , मां मैं थक गयी हूं , मुझसे अब और नहीं चला जाता। लड़के रो रहे हैं इनकी आँखें नींद से बन्द हो रही हैं। रावण से ये संभाले नहीं संभलते। हम खेत की ऊँची मुंडेर पर बैठ गये हैं। मुन्नी गोद में लेटी है। गुरुपाल कह रहा है, "देखो तो सही औरतें इतनी मूर्ख हैं आज कितने बच्चे खो गये हैं। मेले में इन्हें होश ही नहीं रहता।"

"मेले के बिना भी तो बच्चे माओं से बिछुड़ जाते हैं।" मैं उसकी ओर देखे बिना मुन्नी का सिर सहलाते हुए बोल रही हूं।

"तुम कभी भूल भी पाओगी कि नहीं, वह समय और था ये और है," गुरुपाल हौले से बोला।

गुरुपाल को मैं कैसे समझाऊँ कि समय कभी भी और नहीं था और इनसान के भाग्य में दुख इसलिए है कि वो भूल नहीं सकता। मेरी याद अभी तक तांजी है। हर ओर आग लगी थी। देश आजाद होकर बँट गया था। अम्मा और बाबा ने कहा सारे लोग पागल हैं जो डरते हैं वही घर से भागे जाते हैं। अम्मा-अब्बा कितने भूले थे, ये भी नहीं जानते कि दुख हमेशा अपनों ही से मिलते हैं। भगवान, गुरु और अल्लाह के नाम पर दान देने वाले हाथों ने एक-दूसरे की हत्या की। बहनों-बेटियों के लिए कट मरने वाले औरत की मान-मर्यादा को झूठा बोल समझने लगे। भाई और अपनों के शब्द सदियों-सदियों की बेड़ियों की तरह इस आंजादी में कट गये और जत्थे बनाकर घूमने वालों के पाँव में धूल बनकर मिल गये।

अम्मा बाबा से बोली, "जान के साथ इज्जत का भी डर है जो इन लड़कियों के साथ है। मेरी मानो तुम इन सबको भैया के पास भेज दो।"

बाबा बोले, "लोग गाड़ियाँ-की-गाड़ियाँ काट कर फेंक रहे हैं। ऐसे में जाना और भी खतरे से खाली नहीं। तुम सब घर में रहो खुदा हमारी मदद करेगा।" यूं समय तो कट गया, पर बाबा की भूल यही थी को उन्होंने पुरानी जिन्दगी का सहारा लिया था। और इसी भूल के बदले जब गुरुपाल मुझे घर से बाहर घसीट कर ला रहा था मैंने बाबा के

सफेद सिर की नाली के पास पड़ा देखा था। बन्द आँखों और खून से भरे सिर को भूल कर न जाने वह किस शक्ति से प्रार्थना कर रहे थे। दुआ के कबूल होने का वह समय था भला? अम्मा के सीने से एक चमकता हुआ छुरा आर-पार हो गया था। आपा की चीखें आज भी मुझे आँधी के हंगामे में कभी-कभार सुनाई पड़ जाती है। गुरुपाल मुझे खींचे लिए जा रहा था। आज भैया होते तो कोई मुझे छू सकते था, कोई मुझे यूं नंगे सिर जन्मभूमि की उन राहों पर घसीट सकता था जिसका कण-कण मुझे प्यार करते थे। मुझको बाबा से अभी तक कितनी बातें करनी शेष थीं। अम्मा को मैंने कितना सताया था। भैया और भाभी को कितना तंग किया था। और जब मैं डोली के बिना संग्राओं तक खींची गयी तो बाबुल का देश छूट चुका था और कोई न था विदा करने के लिए।

दुख सहने के बाद अगर सुख की आशा हो तो दुख का बोझ हल्का हो जाता है। पर...?

बड़ी मां की मार, गुरुपाल की गालियाँ, भूख-प्यास मैंने दूर टिमटिमाते दिए की तरह इस आशा की तरह देखकर बर्दाश्त कर ली थी कि शायद भइया मुझे ढूँढ़ते किसी दिन संग्राओं में आ जाएं। फिर मैं बड़ी मां की ओर देखकर मुस्करा दूंगी और गुरुपाल की ओर देखे बिना भइया के साथ चली जाऊँगी। उस दिन नीम के पत्तों से खेलती हवा गीत गाएगी और सारा गाँव खुशियाँ मनाएगा। इनसान सारे संसार का स्वयं को केन्द्र क्यूँ समझता है? न जाने क्यूँ? जब आँखें अँधेरा नहीं देखतीं, इनसान उजाले के लिए आँखें झपकाता रहता है और सपने देखता रहता है। आशाएं आवारा विचारों की तरह आस-पास चक्कर काटती रहती हैं। जब मुन्नी पैदा हुई तो मेरे सपनों की कड़ियाँ ढीली पड़ गयी। दिल के चारों ओर आशाओं का घेरा बिखर गया। मैंने सपनों में भी जागना शुरू कर दिया। संग्राओं के गीतों में मेरा भी कभी-कभी एक बोल गूँज उठता।

जब दोनों देशों में मैत्री हुई तो गुरुपाल उदास रहने लगा। सहमा-सहमा और परेशान-सा। इन दिनों मुन्नी पाँव-पाँव चलती थी और प्यारी-प्यारी तोतली बातें करती। खबरें जोर-शोर से फैलीं पर मुझे कोई फौज लेने नहीं आयी।

फिर मैंने सुना पास के गाँवों में दूसरे देशों के सिपाही लड़कियाँ ढूँढ़ रहे हैं। किस देश के...? कहाँ, किन लोगों के बीच? उन दिनों मैंने भी सोचा था, शायद भइया और भाभी

मुझे ढूँढ़ने आएंगे। मैं हर रोज आशाओं की पोटली में गिरह बाँधती और आस लगाए गली के मोड़ की ओर देखती।

उस वर्ष सर्दियों में सिपाही संग्राओं में मुझे भी लेने आये। पर मैं भइया और भाभी की बहन होने के साथ-साथ मुन्नी की मां भी थी। और मैंने सोचा-जाने ये कौन लोग हैं। वह कौन-सा देश हो...जीवन में पहली बार मेरा विश्वास डगमगाया। सपनों के नगर धूल बनकर मेरे सामने से हट गये। मेरी जड़ें संग्राओं के गाँव में गहरी हो गयीं। सूखना, मुर्झाना और बर्बाद होना किसे अच्छा लगता है। हर दुखियारन ब्याह कर कहीं-न-कहीं जाती है। मेरे ब्याह में भइया और भाभी न मिले तो क्या हुआ। गुरुपाल ने मेरे लिए लाशों का ढेर तो बिछाया था। खून से रस्ते लाल तो किये थे। शहर-के-शहर जलाकर प्रकाश जन्मा था। लोग चीखते-चिल्लाते भागते मेरी शादी की खुशियाँ मना रहे थे।

मैं कितनी बार उस किताब के अक्षरों को देखती रही थी जो गुरुपाल वर्षों बाद मुन्नी को पढ़ाने के लिए लाया था। और शब्द मेरी आँखों में धड़कन बन गये थे। मुझे याद आयी वो कहानी जो भइया ने सुनाई थी, "बीबी उससे भी अच्छी कहानियाँ किताबों में हैं। बस तू थोड़ी और बड़ी हो जा फिर देखना कितनी मंजेदार बातें पढ़ने को मिलेंगी।" कहानियों की शहंजादी की तरह जब फौज मुझे छुड़ाने आयी तो मैं छुप गयी। मैं किसी और के साथ क्यूं जाती भला? मुझे ले जाने भइया और भाभी क्यूं नहीं आये? मैं दिल-ही-दिल में भइया और भाभी से रूठ गयी और आज तक रूठी हुई हूं।

मुन्नी जब मेरे पास लेटती और पूछती, "मां तुम दीपावली में मामा के घर क्यूं नहीं जातीं। मां हमें कोई भी मिठाई क्यूं नहीं भेजता?"

_मामा कभी खोजने ही नहीं निकलते मुन्नी, तेरे मामा कभी भी विदा कराने नहीं आये। भला जीवन में किसी के पास इतनी फुर्सत कहाँ कि किसी को ढूँढ़ने निकले। भइया के बच्चे भी अब मुन्नी के बराबर बड़े हो गये होंगे। वह जब अपनी मां से मामा के घर के बारे में पूछते होंगे तो क्या भाभी को भी चुप रह कर या ध्यान हटाने के लिए इधर-उधर की बातें नहीं करनी पड़ती होंगी। कभी-कभार दिल में कहानियाँ होती हैं पर मुंह पर एक शब्द भी नहीं आता। गली की बहुएं जब नीम की छाँव में चरखे

कातती गीत गातीं तो मैं चुप रहती हूं। मायके के गीतों में कितना रस होता है। रुतें बदलती हैं। साल-के-साल कभी किसी को और कभी किसी को उनके पिता-भाई जब विदा कराने आते हैं तब आशा, रेखा, पुरु और चन्दर के पाँव धरती पर नहीं टिकते। वह हर एक से गले मिल-मिल कर मायके जाती हैं। इनके बोल गीत लगते हैं। रुतें बदलती रहती हैं।

लड़कियाँ कौओं को कोठे से उड़ाकर अपने वीरों का रास्ता तकती हैं। मैं कौओं को उड़ाने के लिए उठाऊँ तो बेजान हाथ मेरी गोद में गिर जाते हैं।

बड़ी मां को मुझ पर विश्वास हो गया। जब मैंने अपनी पिछली जिन्दगी से सारे नाते तोड़ लिए तो बड़ी मां से नाता और गहरा हो गया। मैं उनकी लक्ष्मी बहू बन गयी हूं। मेरे हाथ का सूत वह बड़े चाव से लोगों को दिखाती हैं।

खेतों में हरे गेहूं की बालों की सुगन्ध फैले धुएं में मिलकर एक गीत गा रही थी। इक्के-दुक्के तारों से भरा आकाश, नहर में कलकल लहरें, जैसे इन गीतों के बोल थे। कभी बैलों के लिए सिर पर चारे के गट्ठर उठाए किसानों के पीछे, किसी दिन घोड़े पर सवार एक जवान, मेरे खुले किबाड़ों के सामने आकर उतरे और भइया कह कर मैं उससे लिपट जाऊँ। मैं दरवांजे पर खड़ी-खड़ी भला किसकी राह ताकती हूं। मेरी आँखों में आँसू आ गये। मुन्नी के सिर पर अगर ये आँसू गिर गये तो वह घबरा कर उठेगी और पूछेगी, "मां तुम रोती क्यूं हो?" मैं उससे अपना दुख क्या कहूंगी?

मुन्नी अगर पूछे**,** "मां तुम्हारी आँखें भीगी क्यूं हैं**?** तुम दशहरे की रात भी रोती हो मां**?** मां क्या तुम थक गयी हो**?**"

गुरुपाल ने दोनों बच्चों को कन्धे पर उठा लिया है। मुन्नी और मैं संग्राओं जा रहे हैं। सीता जी ने दूसरी बार बनवास जाने के बदले रावण का घर कबूल कर लिया है। मुझमें इतनी शक्ति कहाँ से आएगी कि मैं दूसरी बार किसी अँधेरे से बाहर पाँव धर सकूँ?

जीवन का सारा प्रकाश पीछे नगर की तरह मुझसे दूर हटता चला गया मगर मुझे फिर भी अँधेरे से प्यार नहीं हो पातान जाने क्यूं?

मुझे चलते ही जाना है। थकान मेरे अंग-अंग में दुख बन कर फैली है। पर फिर भी मुझे चलते ही जाना है। जीवन के मेले में वासी और बनवासी सब कदम बढ़ाए चलने पर मजबूर हैं।

सबसे अधिक डर मुझे मुन्नी से लगता है। वह कल फिर मुझसे वही सवाल पूछेगी और फिर कोई इसकी बात का जवाब नहीं दे पाएगा। न गुरुपाल, न मैं और न शायद बड़ी मां।

कई प्रश्न ऐसे क्यूं होते हैं? इतने कठिन जिनका जवाब कोई भी न दे सके?

सर्दियों की लम्बी रातों में दुख अलाव जलाकर, बीते सपनों को बुलाता और कहानियाँ सुनाता है। कहानियाँ भला कभी सच्ची हो सकती हैं। मन बड़ा हठी है, इसे बीते दिन न जाने क्यूं याद आते रहते हैं।

संग्राओं से परे भी कोई चिन्ता है क्या?

गाँव की ऊँची-नीची गलियों में गोबर और मूत की बास, अनाज की बास के साथ मिली जिन्दगी के धारे की तरह बहती चली जाती है।

आज का दिन भी समाप्त हो गया। हवा के झोंकों की तरह दिन समाप्त हो जाते हैं।

जाने अभी कितना रास्ता शेष है।

https://www.hindiadda.com/banvas/